National Research Journal of Human Resource Management
Volume No: 11, Issue No: 2, Year: 2024 (July-December)
PP: 81-84
ISSN: 2349-059X
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

दलित साहित्य में न्याय और प्रतिरोध की चेतना

शोध छात्रा : बेबी कुमारी

विश्वविद्यालय हिंदी - विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वर नगर, दरभंगा।

शोध सारः–

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की संरचना का आधार वर्ण एवं जाति-व्यवस्था रही है। इस व्यवस्था ने समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव उत्पन्न किया। जिससे सदियों से दलित वर्ग सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक उत्पीड़न का शिकार रहे। उनकी संघर्ष, पीड़ा और मुक्ति की आकांक्षा ने ही "दलित विमर्श" को जन्म दिया।

दलित साहित्य भारतीय समाज में दबे उस सच्चाई से अवगत कराती है जहाँ जाति या वर्ण के आधार पर लोगों को दबाया जाता है और उसका शोषण भी किया जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ वर्गों को विशेषाधिकार प्राप्त है तो कुछ वर्गों का शोषण और अपमान किया जाता है। यह जाति और वर्ण व्यवस्था आज भी कायम है। दलित साहित्य में दलित के, जीवन संघर्ष, अपमान, विद्रोह, स्वाभिमान और मुक्ति की आकांक्षा का सजीव चित्रण देखने को मिलता है।

बीज शब्द :- संरचना, विशेषाधिकार, आत्मसम्मान, शोषण, लोकतांत्रिक, समानता, आत्मकथा, सामाजिक ।

प्रस्तावना :- "दलित" शब्द का अर्थ ही होता है दबा या कुचला हुआ या फिर शोषण का शिकार। दलित साहित्य ऐसे शोषित कई वर्गों की अभिव्यक्ति है जिसे समाज ने दशकों से हाशिए पर रखा था। हम जानते हैं कि साहित्य वह है जिसमें सबका हित हो। फिर दलित साहित्य की अवधारणा क्या हो सकती है ? 'दलित' वह है जो दबाया हुआ, उपेक्षित एवं तिरस्कृत है। इस दृष्टि से यह कह सकते हैं कि दलित साहित्य वह है जो इस तिरस्कृत समुदाय की आवाज है। बाबूराव बागुल के अनुसार दलित साहित्य वह लेखन है "जो वर्ग व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है।"**1**

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस साहित्य में उपेक्षित वर्गों का आक्रोश है उस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ जो उनके मौलिक अधिकारों को कुचलने की कोशिश करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य को जनसाहित्य की संज्ञा देते हैं और कहते हैं कि- "लिटरेचर ऑफ एक्शन है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।"**[2]**

दलित साहित्य का इतिहास लगभग भक्ति काल के साहित्य से ही शुरू हो गया है था। भक्तिकाल में कबीर एवं रैदास जैसे संत कवियों ने जाति और वर्ण व्यवस्था पर तीखा प्रहार करना शुरू कर दिया था। कबीर ने कहा है -

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।

मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।" **[3]**

कबीर जी कहते हैं की-मनुष्य कि पहचान जाति से नहीं ब्लकि उसके ज्ञान से होती है। उनका यह कथन सामाजिक समानता का संदेश देती है तथा जातिगत भेदभाव का तीव्र विरोध करता है। संत कवि रैदास भी ऐसे प्रगतिशील समाज की कल्पना करते हैं जहाँ किसी प्रकार का कोई भेदभाव न हो।

ISSN: 2349-059X
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

रैदास कहते हैं -

"ऐसा चाहूँ राज मैं, जहाँ मिले सबन को अन्न।"[4]

देश में सामंती व्यवस्था होने के कारण दलितों को अनेक तरह से शोषण का शिकार होना पड़ा । उन्हें कई दशकों तक अपने आत्मसम्मान एवं अस्मिता के लिए संघर्ष करना पड़ा। उन्हें शिक्षा, न्याय एवं अनेक तरह की सुख-सुविधाओं से वंचित रखा गया। जब ये लोग शिक्षित होने लगे तो जागरूक हुए और अपने अधिकारों के लिए इस सामाजिक, व्यवस्था के खिलाफ विरोध जाहिर करने लगे।

दलित साहित्य में दलित वर्गों का भोगा हुआ यथार्थ, पीड़ा, अपमान एवं संघर्ष की अभिव्यक्त देखने को मिलता है। यह साहित्य सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर उत्पन्न करता है।

ओमप्रकाश बाल्मिकी कहते हैं -

"दलित साहित्य नकार का साहित्य नहीं ब्लकि मनुष्य की मुक्ति का साहित्य है॥"[5]

दलित साहित्य अब केवल साहित्य न रहकर सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक आंदोलन का रूप ले चुकी थी। इस साहित्य में समानता, स्वतंत्रता और मानवाधिकार की चेतना जागृत होती है। आधुनिक समय में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के लिए आवाज उठाया एवं उसे सर उठाकर जीने की का अधिकर भी दिलवाया।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने कहा था-

"मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान बनता है।"[6]

यह कथन स्पष्ट करता है कि जाति से ऊपर मनुष्य का कर्म होता है जो उसकी मूल भावना को व्यक्त करता है।

दलित साहित्य जीवन की उस कठोर वास्तविकता को सामने लाता है जिसमें दलितों का अपना भोगा हुआ यथार्थ है। इसमें काल्पनिक कुछ नहीं होता ब्लकि अनुभव और यथार्थ पर आधारित होता है।

शरण कुमार लिंबाले लिखते हैं -

"दलित साहित्य अनुभवों का साहित्य है।"[7]

दलित साहित्य विद्रोह और प्रतिरोध का साहित्य है। इस साहित्य के अन्तर्गत समाज की अन्यायपूर्ण व्यववस्था के खिलाफ विद्रोह का स्वर मुखरित होता है। नामदेव ढसाल की कविता में यह विद्रोह स्पष्ट रूप में दिखाई देता है।-

"मैं उस व्यवस्था को जलाना चाहता हूँ जिसमे इंसान को इंसान से अलग किया।" **8**

दलित साहित्य आत्मसम्मान और स्वाभिमान की भावना को बुलंद करता है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने दलितों को सामाजिक सम्मान शिक्षा और अधिकार दिलाने के लिए आजीवन संघर्ष करते रहे। उन्होंने छुआछूत को कानूनी रूप से बंद करवाया और सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार दिलाया। दलित साहित्य पर अम्बेडकर जी का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

उन्होंने कहा है -

"शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो।"[9]

यह कथन आज भी दलित आंदोलन का मूल मंत्र बना हुआ है। अम्बेडकर जी मानते थे कि मानव के सामाजिक विकास में जाति सबसे, बड़ी बाधा उत्पन्न करता है इसीलिए जाति शब्द का विनाश होना चाहिए।

ISSN: 2349-059X
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

उन्होंने अपनी पुस्तक 'जाति का विनाश' में लिखा है-

"जाति मानव समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा है।"[10]

उनके विचारों ने दलित साहित्य को एक नई दिशा प्रदान कीं।

इसके बाद एक से बढ़कर एक दलित साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से दलित जीवन की समस्याओं और संघर्षों को उजागर किया। दलित साहित्य में आत्मकथा के माध्यम से लेखकों ने अपनी पीड़ा और भोगा हुआ यथार्थ व शोषण को अभिव्यक्ति दी। इसमें साहित्यकार अपने जीवन के अनुभवों को सीधा व्यक्त करते हैं।

'जूठन' ओमप्रकाश वाल्मिकी की आत्मकथा है जो हिन्दी में दलित साहित्य की महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है। इस रचना में उन्होंने दलितों के साथ होने वाले भेदभाव के बारे में बताया है। वे कहते हैं कि कैसे एक दलित होने पर स्कूल में उनसे झाड़ू लगवाया जाता था। इस रचना में वे लिखते हैं-

"जूठन सिर्फ भोजन नहीं था, वह हमारी सामाजिक स्थिति का प्रतीक था।"[11]

इसी कड़ी में तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया भी दलितों के यथार्थ जीवन का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है।

वे अपनी आत्मकथा मुर्दहिया में लिखते हैं-

"गरीबी और जाति दोनों हमारे पीछे पड़ी थीं।"[12]

दलित साहित्य के अन्तर्गत दलित स्त्री विमर्श भी आती है जिसमें अत्यधिक पीड़ा और सामाजिक न्याय की चेतना दिखाई पड़ती है। जहाँ दलित स्त्री को जाति और लिंग दोनों स्तरों पर शोषण का शिकार बनाया जाता रहा है। दलित स्त्री को दोहरे संघर्ष का सामना करना पड़ता है। एक तो स्त्री होने का दूसरा दलित होने का। दलित स्त्रीयों को यौन शोषण का भी शिकार होना पड़ता है लेकिन उनकी शिकायत भी दबा कर रखी जाती है। सरकारी आँकड़े बताती है कि महज दो प्रतिशत का आकडा ही इस तरह के सामाजिक अन्याय के खिलाफ न्याय दिलाती है। यह सीधा-सीधा हमारे यहाँ की न्याय प्रणाली व्यवस्था को उजागर करती है। यहाँ धूमिल की कविता सटीक बैठती है-

"इस देश की संसद तेली की वह घानी है

जिसमें 'आधा तेल और आधा पानी है।"[13]

इस पंक्ति में व्यवस्था के प्रति असंतोष व्यक्त है। ज़्योतिवा फूले भारतीय समाज सुधारक थे । उन्होंने दलितों स्त्रीयों एवं पिछड़े वर्गों के अधिकार के लिए आवाज उठाया। उन्होंने जाति व्यवस्था का खुलकर विरोध किया और शिक्षा को मुक्ति का सबसे बड़ा हथियार समझा। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था मानवता के खिलाफ है। उनकी प्रसिद्ध पंक्ति है-

"विद्या बिना मति गई, मति बिना नीति गई, नीति बिना गति गई, गति बिना वित्त गया।"[14]

इस पंक्ति के माध्यम से शिक्षा का महत्व स्पष्ट होता है। उनका स्पष्ट मानना था कि जहाँ शिक्षा नहीं होगा वहाँ शोषण होगा।

दलित चेतना के विकास में ज्योतिबा फूले का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से सामाजिक क्रांति लाने का अथक प्रयास किया। उन्होंने 1848 ई० में लड़कियों के लिए पहला विद्यालय खोला। उस समय स्त्रियों और दलितों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। उन्होंने सावित्रीबाई फूले के साथ मिलकर दलितों और स्त्रियों के लिए शिक्षा के लिए आंदोलन चलाया ।

ISSN: 2349-059X
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

फूले ने धार्मिक आडंबर एवं जाति आधारित शोषण का खुलकर विरोध किया। उनकी पुस्तक 'गुलामगिर' में भारत की जातिगत व्यवस्था पर तीखा प्रहार किया है। उन्होंने लिखा है कि-

"ब्राहमणों ने धर्म के नाम पर भूद्रों को मानसिक रूप से गुलाम बना दिया।"[15]

इस कथन से दलित साहित्य में प्रतिरोध की पृष्ठभूमि तैयार होती है। ज्योतिबा फूले ने संगठित रूप से जाति व्यवस्था को -चुनौती दी। उन्होंने बाल विवाह और सती प्रथा जैसी कुरितियों का भी विरोध किया। दलित साहित्य के अन्तर्गत समाज में नई चेतना उत्पन्न हुई।

सामाजिक स्तर पर लोग जागरूक होने लगे। समाज में भेदभाव छूआछूत वाली प्रथा कम होते दिखाई देने लगी। लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूती मिली तथा सामाजिक समानता की माँग और बुलंद होने लगी। इस साहित्य ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि मनुष्य की पहचान उसकी जाति नहीं, ब्लकि उसका कर्म और मानवता है। प्रारंभ में तो इस साहित्य को साहित्य के मुख्यधारा में भी उचित स्थान नहीं दिया गया बाद में कई चुनौतियों का सामना करने के बाद दलित साहित्य को साहित्य में स्थान मिला। आज भी दलित साहित्य की ऐसी अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जो व्यापक स्तर पर पाठक वर्ग तक पहुँच ही नहीं पाती है। आज के आधुनिक दौर में भी जातिगत भेदभाव पूरी तरह से समाप्त नहीं हो पाया है।

निष्कर्ष :- दलित साहित्य भारत के सामाजिक व्यवस्था का वास्तविक दस्तावेज है। यह साहित्य केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति का साधन मात्र नहीं है ब्लकि इसमें संघर्ष, प्रतिरोध और परिवर्तन की चेतना भी निहित है। यह साहित्य सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए निरंतर प्रयास कर रहा है। आज 'दलित साहित्य' साहित्य की मुख्यधारा का महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। दलित साहित्य का प्रभाव राजनीति, समाजशास्त्र, और संस्कृति पर भी पड़ा। दलित साहित्य शोषित वर्ग की आवाज है जो समाज में नई चेतना उत्पन्न की तथा लोगों को जातिगत भेदभाव के विरुद्ध सोचने के लिए प्रेरित किया।

संदर्भ सूची:-

1. सं०. पुन्नी सिंह, भारतीय दलित साहित्य, परिप्रेक्ष्य पृ०. 25
2. ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ०. 15
3. कबीर, कबीर ग्रंथावली, संपादक हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 112
4. रैदास, रैदास पदावली, पृ० 67
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ०15
6. अम्बेडकर, भीमराव, जाति का विनाश, गौतम बुक सेंटर, नई दिल्ली, पृ० 42,51
7. लिंबाले, शरणकुमार - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, पृ० 28
8. ढसाल, नामदेव कविता संग्रह, पृ० 73
9. अम्बेडकर, संपूर्ण वाङ्गय, खंड-17, भारत सरकार प्रकाशन, पृ० 89
10. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ० 34,56
11. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, पृ० 91
12. धूमिल, धूमिल रचनावली, पृ० 118
13. ज्योतिबा फूले, गुलामगिरि, पृ०. 41
14. ज्योतिबा फूले, गुलामगिरि, पृ० 67